संवैधानिक दृष्टि से गैर कानूनीः भारत में अध्यादेश राज
Constitutionally Lawless: Ordinance Raj in India

शुभंकर धाम
Shubhankar Dam
March 10, 2014

गनीमत है मनमोहन सिंह सरकार ने अपनी पूर्व निर्धारित योजना के बावजूद एक साथ अनेक अध्यादेश ज़ारी करने का निर्णय वापस ले लिया, वर्ना संविधान का भारी उल्लंघन हो जाता. रिपोर्ट के मुताबिक छह अध्यादेशों पर विचार किया जा रहा था. इनमें से कुछ अध्यादेश ऐसे थे, जिनसे भ्रष्टाचार पर अंकुश लगने की संभावना थी, ताकि श्री राहुल गाँधी को चुनावी सफलता मिल सके. दूसरे अध्यादेशों में विकलांग विधेयक और अनुसूचित जनजाति / अनुसूचित जाति (अत्याचार निवारण) विधेयक भी थे, जिनसे कदाचित् मरणासन्न मंत्रिमंडल को सामाजिक और लोकतांत्रिक चमक मिल सकती थी. लेकिन लगता है कि सार्वजनिक आलोचना, राजनैतिक विरोध और सबसे अधिक महत्वपूर्ण तो बात तो यह है कि राष्ट्रपति की आशंका के कारण बहुत अच्छी कहानी गढ़ने के बावजूद ये अध्यादेश आगे नहीं बढ़ पाये.

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 123 के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि यदि "वह इस बात से संतुष्ट हों कि तत्काल कार्रवाई के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल हैं और इस कारण अध्यादेश ज़ारी करना आवश्यक है तो वह अध्यादेश ज़ारी करने के लिए अनुमोदन प्रदान कर सकते हैं. " ये अध्यादेश संसदीय विधेयक की तरह ही होते हैं, जिन्हें ऐसे समय के दौरान ज़ारी किया जा सकता है जब संसद का कोई सत्र न चल रहा हो. अध्यादेश अस्थायी प्रकृति को होते हैं और उन्हें तभी स्थायी किया जा सकता है जब छह महीने की अवधि के अंदर ही उसे संसद के सत्र में पारित करा लिया जाए, अन्यथा वह निष्प्रभावी हो जाएगा.

1950 और 2009 के बीच 10.85 के औसत से हर साल 651 अध्यादेश ज़ारी किये जाते रहे हैं. अब इसे थोड़ा अलग ढंग से देखें. हर साल भारत के राष्ट्रपति लगभग ग्यारह बार इस नतीज़े पर पहुँचते हैं कि परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि "तत्काल कार्रवाई" आवश्यक है. असल में सबसे पहले तो अध्यादेश ज़ारी करने का निर्णय मंत्रिमंडल द्वारा ही किया जाता है, लेकिन उसे अमलीजामा पहनाने के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है. क्या मंत्रिमंडलों ने अनुच्छेद 123 का सही तौर पर अनुपालन किया है? याद रखें कि इसका इस्तेमाल केवल उन परिस्थितियों में ही वाजिब है जब "तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो".

भारत के संविधान के अनुपालन का सबसे पहला अवसर भारत के पहले प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू को मिला. उन्हें अनुच्छेद 123 को परिभाषित करने का विलक्षण अवसर मिला था. उन्होंने इस काम को हल्के ढंग से ही किया. असल में तीन अध्यादेश तो उसी दिन ज़ारी किये गये थे जिस दिन संविधान लागू हुआ था अर्थात् 26 जनवरी, 1950 को. और उस साल के अंत तक अठारह अध्यादेश और ज़ारी किये गये थे. लोकसभा के पहले भारतीय अध्यक्ष जी.वी.मावलंकर हल्के ढंग से अपनाये गये इस रवैये से बहुत नाराज़ हुए थे और उन्होंने चिंतित होकर इस बारे में नेहरू जी को लिखा था कि अगर अध्यादेशों को इसी तरह से ज़ारी किया जाता रहा तो संसद अप्रासंगिक हो जाएगी. "सदन अपने-आपको उपेक्षित महसूस कर रहा है और केंद्रीय सचिवालय को शायद ढिलाई की आदत पड़ जाएगी". "इन दोनों ही बातों से उत्कृष्ट संसदीय परंपरा को

विकसित करने में मदद नहीं मिलेगी.” उन्होंने एक बार फिर सन् 1954 में नेहरू जी को ताकीद की कि अध्यादेश का इस्तेमाल केवल “बहुत ही आवश्यक या आपात् स्थिति” में ही किया जाना चाहिए. लेकिन उनके पत्रों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया.

मई 1964 को अपनी मृत्यु तक नेहरू जी भारतीय संविधान के अंतर्गत 102 अध्यादेश ज़ारी कर चुके थे. उनके मंत्रिमंडलों ने अनुच्छेद 123 की मर्यादाओं को कभी गंभीरता से नहीं लिया. उनके लिए हर समय “परिस्थितियाँ ऐसी ही बनी रहीं कि तत्काल कार्रवाई आवश्यक है”. और जब एक बार यह परिपाटी बन जाए तो ज़ाहिर है कि उसे बदलना संभव नहीं होता.

उसके बाद के प्रधानमंत्रियों ने तो अनुच्छेद 123 की नेहरू परंपरा का नियमित रूप से निर्वाह किया और शायद ही कभी इसकी गंभीरता को समझने का प्रयास किया और 1971-77 के दौरान तीसरी बार प्रधानमंत्री बनने के बाद तो इंदिरा गाँधी के कार्यकाल में 99 और 1991-96 के दौरान नरसिम्हाराव के कार्यकाल में 108 अध्यादेश ज़ारी किये गये, इस प्रकार इन दोनों ही प्रधानमंत्रियों ने अनुच्छेद 123 का जमकर दुरुपयोग किया. किसी भी पार्टी या गठबंधन सरकार ने नैतिकता का ख्याल नहीं किया. मोरारजी भाई (21), चरणसिंह (7), राजीव गाँधी (37), वी.पी. सिंह (10), देवगौड़ा (23), इंदर गुजराल (23), अटलबिहारी वाजपेयी (58) और मनमोहन सिंह (40, 2009 तक) . सभी ने अनुच्छेद 123 का दुरुपयोग किया.

कदाचित् अनुच्छेद 123 की त्रासदी यह नहीं है कि इस प्रावधान का बार-बार इस्तेमाल किया गया, बल्कि इसकी त्रासदी यह है कि जिन परिस्थितियों में इसका इस्तेमाल हुआ उनमें इसकी आवश्यकता नहीं थी. अपने शोध से मुझे यह पता चला कि 1952 और 2009 के बीच ज़ारी किये गये अध्यादेशों में लगभग 177 अध्यादेश उन दिनों ज़ारी किये गये थे जब संसद का सत्र पंद्रह दिन बाद शुरू होने वाला था या जिसका अंत हुए सिर्फ़ पंद्रह दिन ही हुए थे. उसके बाद कुछ ऐसे भी मौके आए जब यह जानते हुए भी कि संसदीय अनुमोदन के लिए आवश्यक बहुमत नहीं है, मंत्रिमंडल ने अध्यादेश ज़ारी कर दिये. ऐसी स्थिति में अनुच्छेद 123 ही वह वैकल्पिक मार्ग था जिसकी मदद से बहुमत न होते हुए भी कानून “लागू” किया जा सकता है. आतंकवाद विरोधी अध्यादेश 2001 इसका एक अच्छा उदाहरण है. कभी-कभी तो मंत्रिमंडल ने ऐसे अध्यादेश भी ज़ारी किये हैं जिनका मक़सद पहली नज़र में, खास तौर पर तब जब प्रस्तावित उपाय लोकप्रिय नहीं थे, संसदीय छानबीन से बचना था. विश्व व्यापार संगठन के सुधारों को लागू करने के लिए नरसिंह राव का पेटेंट (संशोधन) अध्यादेश, 1994 इसका एक अच्छा उदाहरण है. और मंत्रिमंडल ने राजनैतिक वर्चस्व हासिल करने के लिए यह हथकंडा अपनाया. जुलाई, 1969 में संसदीय सत्र शुरू होने से सिर्फ़ एक दिन पहले ही ज़ारी इंदिरा गांधी का बैंकों का राष्ट्रीयकरण अध्यादेश, 1969 भी इसका अच्छा उदाहरण है.

दिलचस्प बात तो यह है कि उच्चतम न्यायालय ने परोक्ष रूप में इस प्रवंचना में मदद ही की है. जब आर. सी. कूपर बनाम भारतीय संघ (1970) में अनुच्छेद 123 को अनुचित और कपटपूर्ण बताकर चुनौती दी गयी तो न्यायालय ने इसमें दखल देने से इंकार कर दिया. अधिकांश न्यायाधीशों का मत था कि यह निर्णय करना मंत्रिमंडल का काम है कि तत्काल आवश्यकता किसे माना जाए. निश्चय ही न्यायालय ने तत्काल आवश्यकता के प्रश्न को सुलझाने का काम राजनीतिज्ञों को सौंप दिया और अनुच्छेद 123 की सीमाओं के निर्धारण का दायित्व भी उन पर ही छोड़ दिया. जल्द ही यह तर्क स्वीकार कर लिया गया और अस्सी के दशक तक इसे

मानक माना जाने लगा. यही कारण है कि आज यदि किसी अध्यादेश को अनुचित मानकर चुनौती दी जाती है तो न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करने से ही इंकार कर देगा.

अध्यादेशों की भारतीय कहानी प्रभावी तौर पर ऐसी कहानी बन गयी है जिसमें संविधान का अर्थ ही खो गया है. नेहरू जी ने इसके दुरुपयोग की शुरुआत की और उनके उत्तराधिकारियों ने उनका ख़ुशी से उनका अनुसरण किया. परंतु सन् 1977 तक तो केंद्र में विरोधी दल ने अनुच्छेद 123 और इसकी पूर्व-निर्धारित शर्तों को प्रासंगिक बनाये रखने के लिए कुछ न कुछ विरोध जारी रखा. उन्होंने अक्सर इसका इस्तेमाल करने के लिए प्रबल औचित्य की माँग की और संसद के अंदर और बाहर कांग्रेस सरकार को इसके लिए ज़िम्मेदार ठहराया. लेकिन सन् 1977 में मोरार जी देसाई के सत्ता में आने के बाद सारा दृश्य ही बदल गया. भारत के पहले गैर- कांग्रेसी प्रधानमंत्री के रूप में वे भी अध्यादेश ज़ारी करते रहे. उनके अंशकालीन उत्तराधिकारी चौधरी चरण सिंह ने भी कोई बेहतर काम नहीं किया. सन् 1980 में जब श्रीमती गाँधी सत्ता में वापस लौटीं तो सम्पूर्ण राजनैतिक वर्ग ने अपनी सुविधा से अध्यादेश ज़ारी करने का अनुग्रह प्राप्त कर लिया. कोई भी राजनीतिज्ञ नहीं बचा जिसने अनुच्छेद 123 की मूल भावना को बचाने का प्रयास किया हो और इसके पक्षपातपूर्ण राजनैतिक दुरुपयोग के कारण अनुच्छेद 123 का संवैधानिक बंधन भी समाप्त हो गया. तब से भारत ने मुड़कर इस ओर नहीं देखा.

मनमोहन सिंह के मंत्रिमंडल को अपने प्रस्तावित अध्यादेश जबरन वापस लेने पड़े, यह अनुच्छेद 123 की छोटी-सी विजय है. हालांकि इससे इस प्रावधान के संवैधानिक अर्थ की कुछ हद तक तो वापसी हो सकेगी, लेकिन पैंसठ साल की चोट का घाव आसानी से नहीं भरेगा. अनुच्छेद 123 को पूरी तरह से बहाल करने के लिए भारी राजनैतिक आत्मानुशासन की आवश्यकता होगी. यह एक संवैधानिक दायित्व है जिससे भारत के भावी मंत्रिमंडल को विमुख होने की कोशिश नहीं करनी चाहिए.

शुभंकर धाम सिंगापुर मैनेजमैंट युनिवर्सिटी ऑफ़ स्कूल ऑफ़ लॉ में कानून के प्रोफ़ेसर हैं. वे भारत में राष्ट्रपति विधानः अध्यादेश का कानून और प्रचलनः कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, 2014 के लेखक हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@hotmail.com>